International Journal of Applied Research 2021; 7(12): 378-380

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(12): 378-380
www.allresearchjournal.com
Received: 22-09-2021
Accepted: 10-11-2021

डॉ. अवधेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अवधेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

हिन्दी नाट्य साहित्य में स्त्री–चेतना (विशेष संदर्भः प्रसादोत्तर नाटक)

डॉ. अवधेश कुमार

प्रस्तावनाः

साहित्य–सृजन पर परिवेश के भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का प्रभाव प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में पड़ता है। प्रसादोत्तर साहित्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है। पौराणिक युग से ही नारी को कामवासना की पूर्त्ति का साधन माना जाता रहा। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को किसी ने मान्यता नहीं दी। आधुनिक–युगीन नारी की कर्मठता ने इन विचारों को परिवर्तित कर दिया है, समाज में उसने अपनी विशिष्ट क्षमताओं का अनेकशः परिचय दिया है। उदयशंकर भट्ट कृत 'विद्रोहिणी अम्बा' में नारी के अनादर तथा उसके द्वारा लिए गए प्रतिशोध को कथा–रूप में प्रस्तुत किया गया है। अम्बा के हृदय में अपने अपमान के प्रति आक्रोश है। शाल्वराज के समक्ष अपनी करुण अवस्था पर सभासदों को ठहाके लगाते देख वह सिंहिनी के समान कह उठती हैः "स्त्रियों का मानापमान क्या! पुरुष–समा की इतनी दृष्टता! स्त्रियों के सौन्दर्य की काई पर फिसलने वाली पुरुष जाति ने आज से नहीं सदा से स्त्रियों का अपमान किया है।"[1] अम्बा का यह व्यक्तित्व भीष्म जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ के लिए एक चुनौती बनकर आया है। कुछ नाटककारों ने तो नारी–सौन्दर्य को विग्रह और युद्ध का मूल कारण माना है। 'अश्वमेघ' नाटक में लक्ष्मीनारायण मिश्र द्रौपदी को महाभारत– युद्ध का मूल कारण बताते हैं तो 'विद्रोहिणी अम्बा' में भीष्म और उनके गुरु परशुराम के मध्य हुए भयंकर संग्राम का कारण अम्बा का हठ है। 'सूर्यमुख' नाटक में प्रद्युम्न की पराजय और द्वारिका के अवसान का मूल कारण या दोष वेनूरति के सौन्दर्य को माना गया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'चक्रव्यूह' नाटक में द्रोणाचार्य का मत भी यही है।[2] दूसरी ओर इन नकारात्मक मतों के समानान्तर नारी को पुरुष की आदिशक्ति भी कहा गया है। 'अपराजित' नाटक में अवश्वत्थामा की तेजस्विनी पत्नी, धृतराष्ट्र–पत्नी गान्धारी तथा अभिमन्यु की पत्नी उत्तर एवं 'अश्वमेघ' में अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा और बम्रुवाहन की पत्नी चम्पकमाला उनके उन्नति–मार्ग में अक्षय प्रेरणा सिद्ध हुई हैं। संक्षेप में, आलोच्य काल में पौराणिक नाटक आधुनिक युग में भी अपनी भूमि और अपना दर्शक पा गए हैं, वह युग के भीतर के हैं, परिवेश–रहित नहीं।

इस युग के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय दायित्व–निर्वाह की दृष्टि से पुरुष और नारी दोनों को ही समान माना गया है। आलोच्य नाटककारों ने समाज में नारी की स्थिति का गहन विश्लेषण किया है। वैदिक युगीन नारी, मध्यकालीन नारी तथा मुस्लिम शासन में एवं आधुनिक परिवेश में नारी– इन समस्त युगों में नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण को नाटककारों ने विभिन्न रूपों में प्रकट किया है। समाज नारी पर विशेष रूप से क्रूर है और उसकी मूलों को कमी क्षमा नहीं करता।[3] समाज पुरुष–प्रधान है, जिसमें नारी को 'राह के रोड़े' से अधिक कुछ नहीं समझा जाता।[4] 'साँपों की सृष्टि' नाटक में प्रभा ने पुरुषों की इसी स्वार्थी तथा ईर्ष्यालु प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है।[5] यह स्थिति तब अधिक विडम्बनापूर्ण हो जाती है, जब इस ओर ध्यान जाता है कि प्राचीन युग में नारी को सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता था। उसे धर्म–कर्म के लिए प्रेरणादायिनी तथा राजनीति की संचालिका के रूप में भी देखा गया तथा उसके अन्य अनेक गुणों का वर्णन किया गया।[6] किन्तु मुग़लकालीन नारी का जीवन अत्यन्त अभिशप्त हो गया था। वह अपना जीवन सामाजिक रूढ़ियों के चक्र में पिसते हुए तथा पर्दे में घुटते हुए व्यतीत करती थी।[7] इसके विपरीत आधुनिक नारी की स्थिति पर्याप्त परिवर्तित है। वह कर्मठ है, घर की दासी या सम्पत्ति मात्र न बनकर पुरुष को प्रेरणा देने वाली सच्ची सहयोगिनी बन चुकी है एवं राष्ट्रोन्नति के कार्यों में सहायक भी है– "स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा एक बात में बड़ी हैं। वे फूलों से अधिक कोमल और वज्र से अधिक कठोर हैं। हर एक स्त्री में ये दोनों गुण होने चाहिए। पुरुष में नहीं हो सकते स्त्रियाँ पुरुषों का सब काम कर सकती हैं और कुछ उनसे बढ़कर भी।[8]

नारी–जीवन की चर्चा के सन्दर्भ में इस युग के नाटककारों ने विवाह अवैध सम्बन्धों, अनमेल विवाह, बाल–विवाह, मातृत्व, विधवा–जीवन की विडम्बना प्रवृत्ति विषयों पर भी विचार प्रस्तुत किए हैं। विवाह एक श्रेष्ठ पद्धति है, जिससे सामाजिक मर्यादा का भी निर्वाह होता है एवं स्त्री–पुरुष के व्यक्तित्व का भी विकास होता है। विवाह के लिए स्त्री–पुरुष में समान गुणों का होना भी अपेक्षित है। अनमेल विवाह अथवा बाल–विवाह के परिणाम दुःखदायी होते हैं–

"हम्मीरः समाज की मर्यादा! दुधमुँही बच्चियों का विवाह कर देना और उनके विवाह हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित रखना, इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो? नहीं कमला, यह घोर अत्याचर है। हमें समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करना है।[9]

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' शीर्षक नाटक में ओक्काक और शीलवती विवाहित हैं। ओक्काक नपुंसक है, जिसके कारण महत्तरिका को अपना जीवन बोझ लगता है।[10] आधुनिक नारी पहले के समान आदर्शवादी समाधानों से तुष्ट नहीं हो सकती, उसे मानसिक तृप्ति के साथ ही शारीरिक तृप्ति की भी वांछा है। दूसरी ओर ऐसी नारियाँ भी हैं, जिन्हें विवाह का सौभाग्य प्राप्त ही नहीं हुआ तथा जिन्हें छल से कलंकिनी बना दिया गया। ऐसी स्त्रियाँ समाज से तिरस्कार पाती हैं केवल उनकी अवैध सन्तान ही उनका एकमात्र सहारा होती है। मातृत्व को नारी के जीवन की चरम उपलब्धि माना गया है किन्तु यह समझना भूल होगी कि विगत शताब्दियों में नारी इतनी अधिक आदर्शवादिनी थी कि शारीरिक सुख उसके लिए गौण था। सत्य तो यह है कि स्थिति–विशेष में मातृत्व उसके लिए तब भी गौण हो सकता था और आज भी।[11] इन सभी स्थितियों से भिन्न स्थिति है विधवा नारी की, जिसे समाज अमंगलकारिणी मानता आया है।[12] 'हर्ष' नाटक में सेठ गोविन्ददास ने यह प्रतिपादित किया है कि विधवा को समाज में सम्मानित और उच्च स्थान मिलना चाहिए क्योंकि उसका जीवन तपस्या की शक्ति से युक्त है।

सामाजिक रूढ़िग्रस्तता के कारण भी वर्तमान भारत का विकास न तो सही दिशा में और न ही उपयुक्त गति से हो पा रहा है। पुत्र और कन्या के जन्म में अन्तर मानकर उनके पृथक् व्यवहार करना, जन्मदिन प्रभृति आयोजनों में उचित से अधिक व्यय करना, विवाह–सम्बन्धों में जाति–पाँति के बन्धन से मुक्त न होना, दहेज़ के लोभ में घर नष्ट करना, विधवा और परित्यक्ता नारियों की अति दयनीय अवस्था आदि सभी सामाजिक बुराइयों का भारत में अस्तित्व है। अन्धविश्वासी व्यक्ति यही मानते हैं कि प्राचीन संस्कृति ही श्रेष्ठ थी तथा आज यदि कुछ भी सराहनीय है तो वह प्राचीन का अवशिष्ट है– "वर्तमान में जो कुछ अच्छा है, वह प्राचीन का जूठन ही तो है।"[13]

विवाह से सम्बन्धित रूढ़ियाँ, भारत से पूर्णतः मिट नहीं पाई है। नारी की सर्वांगीण उन्नति के अभाव में किसी भी राष्ट्र की परिकल्पना को अधूरा ही कहा जाएगा। संभवतः इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कतिपय नाटककारों ने परित्यक्ता और विधवा नारियों की सामाजिक अवमानना तथा दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया है। यदि विवाहिता नारी एक बार मर्यादा का त्याग कर दे तो हिन्दू समाज उसे कभी क्षमा नहीं करता।[14] यह सामाजिक मर्यादा केवल विधवा के लिए ही नहीं है, सधवा नारियों को भी अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। विधवा नारी की स्थिति सचमुच दयनीय है।[15] 'दलित कुसुम' (सेठ गोविन्ददास) में बाल विधवाओं पर रूढ़िवादी समाज के अत्याचारों का चित्रण इसका उदाहरण है। विधवा–कल्याण संस्थाओं की आड़ में चलनेवाली वेश्यावृत्ति सामाजिक भ्रष्टाचार का कुत्सित उदाहरण है। विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार देने से भी पाखण्डी जन क़तराते हैं। यह दुराचार तभी समाप्त हो सकता है, जब इसके मूल कारणों को नष्ट किया जाए।[16] वस्तुतः जब तक धर्म और समाज को मानवीय विकास की दिशा में उन्मुख नहीं किया जाएगा, तब तक ये रूढ़ियाँ निर्मूल नहीं हो सकेंगी। जब तक इस दिशा में उपयुक्त प्रयत्न नहीं किए जाएँगे तब तक यह आशा करना व्यर्थ है कि देश का सम्पूर्ण नारी वर्ग राष्ट्रीय–सामाजिक विकास–धारा में समुचित योग दे सकेगा। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान नारी का व्यक्तित्व समसामयिक राष्ट्रीय जीवन से क्रमशः जुड़ता जा रहा है। इसी क्रम में सामाजिक जागरण में नारी की भूमिका पर भी विचार किया जा सकता है।

भारतीय नारी की सामाजिक स्थिति प्रारम्भ से ही असन्तोषजनक रही है। स्वतंत्रता के पूर्व परिवार, समाज और राष्ट्र तो विचार का विषय बनते थे, किन्तु व्यक्ति गौण था। व्यक्ति को राष्ट्र और समाज की ओर से कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे और इस स्थिति का शिकार मुख्यतः नारी थी।[17] नारी की पवित्रता और अपवित्रता का निर्णय पुरुष समाज ही करता था। एक उदाहरण देखिए– "हिन्दू स्त्री के लिए इहलोक और परलोक दोनों की ही दृष्टि से पातिव्रत से अधिक मूल्यवान और कोई वस्तु नहीं है और इस समाज में पति का स्त्री को व्यभिचारिणी कह देना, उसका व्यभिचारिणी होना सिद्ध कर देता है।[18] पुरुष नारी से अधिक सामर्थ्यवान था किन्तु अपनी अतिरिक्त शक्ति का उपयोग उसने प्रायः नारी पर अत्याचार करने में किया। उसके समक्ष कानून आदि की विशेष बाधाएँ नहीं थीं क्योंकि वह युग नारी को पर्दे में रखने का युग था। अतः धर्म और समाज की आड़ लेकर पुरुष ने नारी के बन्धनों को दृढ़ कर दिया।[19] इन अत्याचारों द्वारा एक ओर उसके अहं को सन्तुष्टि मिलती थी, तो दूसरी ओर उसे यह पौरुष–प्रदर्शन का अच्छा माध्यम प्रतीत होता था। स्त्री के लिए उसका वैवाहिक जीवन नरक–तुल्य हो जाता था। एक संवाद देखिएः "सूकाः अंधा कुआँ यही है जिसके संग मैं ब्याही गई हूँ– जिसमें एक बार मैं गिरी और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी। न मुझे कोई निकाल पाया, न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस, धीरे–धीरे इसी में चुककर मर जाऊँगी।"[20]

स्त्री के लिए उसका जीवन समझौता–प्रधान था, आनन्द–प्रधान नहीं।[21] ये विवाह–सम्बन्ध भी दहेज़ जैसी कुप्रथाओं के कारण विकृत स्वरूप से युक्त थे। 'अलग–अलग रास्ते' में विवाह की इस अदूरदर्शिता को कटु शब्दों में प्रकट किया गया है।[22] इन परिणामों के मूल कारण की खोज की जाए तो प्रमुख दोष हमारी सामाजिक रूढ़ियों का ही पाया जाएगा, जिनसे तत्कालीन समाज अत्यधिक ग्रस्त था।[23]

स्वातंत्र्य–प्राप्ति के पश्चात् उक्त स्थिति में परिवर्तन आना आरम्भ हुआ। किन्तु अब समाज की प्रमुख इकाई व्यक्ति हो गया। यहाँ तक कि व्यक्ति अपनी इच्छा–पूर्ति के लिए समाज के बाधक नियमों की अवहेलना करने लगा और इस संदर्भ में उसे राष्ट्रीय संविधान की ओर से सुविधाएँ भी मिलीं। विवाह–विच्छेद के विषय में कानूनी अधिकार मिलने और परित्यक्ताओं तथा विधवाओं का पुनर्विवाह सहज हो जाने के कारण नारियों के बन्धन भी कुछ शिथिल हुए। अपने राष्ट्रीय अधिकारों का उपयोग करके नारी ने सामाजिक रूढ़ियों को भंग करने के लिए प्रयत्न आरम्भ किए। राष्ट्रीय नियम व्यक्ति और समाज को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं, इसलिए नारी को भी शिक्षा, नौकरी आदि क्षेत्रों में अनेक सुविधाएँ प्राप्त हुईं। आदर्श और त्याग के दृष्टिकोण को छोड़कर उसमें अब यह चेतना जागृत होने लगी है कि उसे शताब्दियों के दासत्व से मुक्त होना है– "पढ़ी–लिखी लड़कियों का यह सारा विवाह का चक्कर बड़ा ही अपमानजनक है। पति के अर्थ होते हैं मालिक, मालिक माने खुदा नहीं, मालिक का माने गुलामवाला मालिक।"[24]

स्त्री और पुरुष का निर्माण समान तत्त्वों से हुआ है, अतः यदि केवल शारीरिक शक्ति के आधिक्य के कारण पुरुष उसे यौन–सम्पूर्ति का साधन बनाए रखे तो यह उसका दम्भ और नारी की दुर्बलता है, जिसका प्रतिकार नारी को करना है।[25] आज की

नारी अपनी शोचनीय अवस्था के प्रति विद्रोह करने लगी है। 'उड़ान' नाटक में नायिका माया को यह आभास हो जाता है कि उसे प्राप्त करने के इच्छुक तीनों पुरुष पात्र उसे जीवनसंगिनी के रूप में प्राप्त नहीं करना चाहते। उनका दृष्टिकोण कुछ और है। माया साहसपूर्वक उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है।[26] यदि समाज नारी की स्वतंत्रता को बाधित करता है तो वह उसका विरोध करती है, अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा चाहती है। आज की नारी परिवार के हित में अपनी बलि देने को तैयार नहीं है।

नारियों की दुर्दशा विषयक यह समस्या इतनी सरलता से सुलझने वाली नहीं है। इसके लिए नारी को स्वयं प्रयत्न करने होंगे। घर की चारदीवारी में क़ैद रहना नारी का स्वभाव हो गया था, पर आज राष्ट्र के हित में उससे अन्य कर्त्तव्यों को निभाने की अपेक्षा की जाती है– "बहन, स्त्री समझती है कि उसका काम केवल पत्नी और माता के काम को पूरा कर देना है। पर इतना ही नहीं है। उसका काम अपनी जीविका उपार्जन करना भी है। उसका काम समाज में अपना स्वतंत्र स्थान बनाना भी है।"[27] वस्तुतः आर्थिक आधार पर अवलम्बित वर्तमान समाज में नारी की स्वाधीनता उसकी आर्थिक स्वतंत्रता पर निर्भर करती है। कहीं–कहीं इस आर्थिक स्वाधीनता ने वैवाहिक जीवन में दारें भी उत्पन्न की हैं।[28] निजी स्वार्थों के वशीभूत व्यक्ति ने यदि विवाह को दिखावा या आडम्बर बनाया था तो आधुनिक नारी यह मानती है कि विवाह का अर्थ पारस्परिक समझ है, सामाजिक स्वीकृति–मात्र नहीं। गृहस्थ–सुख के लिए पुरुष और नारी का समान स्तर पर जीना आवश्यक है– "पुरुष और नारी गृहस्थी के ये दो चक्र, इनमें से एक छोटा और दूसरा बडत्रा रहेगा तो शादी की सहज–सरल गति में अन्तर पड़ जाएगा।"[29]

विवाह तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब पति–पत्नी अपने दायित्वों को समझते हुए परस्पर उचित व्यवहार करें। समाज में वास्तविक परिवर्तन तभी आ पाएगा।

सामाजिक जागरण में नारी की स्थिति का विश्वलेषण करते हुए विधवाओं तथा वेश्याओं की सामाजिक स्थिति पर भी दृष्टिपात किया जा सकता है। प्रायः आलोच्ययुगीन नाटककारों ने इन दोनों ही विषयों में पारम्परिक दृष्टिकोण को ही उभारा है अर्थात् यथास्थिति से आगे बढकर समस्या के समाधान की दिशा में कुछ भी नहीं कहा गया।

निष्कर्षतः समाज के निर्माण में पुरुष और नारी की समान भूमिका होती है। समाज के परिवर्तित स्वरूप के साथ नारी की भूमिका भी परिवर्तित होती जा रही है। प्राचीन और नवीन सन्दर्भों में नारी की तुलना करते हुए प्रसंगवश वैवाहिक जीवन में नारी की स्थिति, आर्थिक स्वातंत्र्य और नारी, परित्यक्त एवं विधवा नारियों की समस्याएँ आदि के विषय में भी नाटककारों ने अपने मत व्यक्त किए हैं।

संदर्भ

1. देखिए 'विद्रोहिणी अम्बा', पृ. 80
2. "पुरुष के सबसे प्रधान कर्म समर के मूल में बराबर नारी रही है और जब तक सृष्टि चलेगी और जब कभी युद्ध होगा, कारण नारी रहेगी।" –चक्रव्यूह, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 138
3. देखिए 'प्रकाश स्तम्भ', हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 105–106
4. "न जाने इन पुरुषों को क्या हो गया है! छोटे से लेकर बड़े तक, सब–के–सब, नारी को अपने मार्ग का काँटा समझते हैं। नारी को क्षुद्र समझना ही मानो महत्ता का लक्षण बन गया है।" – 'गौतम नन्द', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', पृ. 22
5. देखिए 'साँपों की सृष्टि', हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 51
6. (क) "शशि गुप्तः– शरीर–तृप्ति भर का आधार हम नारी को नहीं मानते। धर्म का आधार है वह हमारे लिए और कर्म की प्रेरणा भी वही है।" – वितस्ता की लहरें, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 113

   (ख) "बालगुप्तः– नारी? ओह! नारी की मृकुटियों में ही तो संसारभर की राजनतियों की लिपि है। जब उसकी पलकें झुक जाती हैं तो न जाने कितने सिंहासन उठ जाते हैं और जब उसकी पलकें उठती हैं तो न जाने कितने राजवंश गौरव के शिखर से गिर जाते हैं।" – अग्निशिखा, रामकुमार वर्मा, पृ. 59
7. देखिए 'स्वप्न भंग', हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 64
8. झाँसी की रानी, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ. 19
9. उद्धार, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ. 85
10. देखिए 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 14
11. "नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं है, महामात्य! है केवल पुरुष से संयोग के इस सुख में... मातृत्व केवल एक गौण उत्पादन है... जैसे दही से निकलता तो मक्खन है, लेकिन तल–छट में थोड़ी–सी छाछ भी बच जाती है... (संकेत–सहित) हम सब छाछ हैं, छाछ... मक्खन कुछ और था, जो जन्मदाताओं के जीवन में रस घोल गया।" – सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, सुरेन्द्र वर्मा, पृ. 52
12. "विधवाओं के प्रति समाज का यह निन्दनीय व्यवहार, उनका यह नीच तिरस्कार, ओह असहनीय है, सर्वथा असहनीय है!" – कुलीनता, गोविन्ददास, पृ. 133
13. बाँस की फाँस, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ. 26
14. "मैयाः– इस तरह बहकाई गई नारी को जो अपवित्र समझता है, उस समाज की कालिमा सबसे गहरी है। यदि उसने ऐसी नारी का आदर करना न सीखा तो एक दिन सारा हिन्दुत्व डूब जाएगा इस अत्याचार में।" – सुजाता, गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ. 27
15. देखिए 'बिना दीवारों के घर', मन्नू भण्डारी, पृ. 85
16. देखिए 'मंगल सूत्र', वृन्दावनलाल वर्मा, पृ. 11
17. "स्त्री सदैव पुरुष के आश्रित रहेगी।" – राजयोग, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 91
18. प्रकाश, सेठ गोविन्ददास, पृ. 214
19. देखिए, 'दलित कुसुम', सेठ गोविन्ददास, पृ. 20
20. अंधा कुआँ, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 129
21. देखिए, 'क़ैद', उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 76
22. देखिए 'अलग–अलग रास्ते', उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 65
23. "हम कन्याएँ विवाह का अर्थ क्या जानें? हमारे लिए तो विवाह है माता–पिता या कुटुम्बी जनों की इच्छा। वे जिसे हमारी बाँह पकड़ा दें, वही हमारा वर है।" – विश्व–प्रेम, सेठ गोविन्ददास ग्रन्थावली, भाग–3, पृ. 6
24. सुजाता, गोविन्दवल्लभ, पन्त, पृ. 37
25. देखिए 'सिन्दूर की होली', लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ. 81
26. "तुम एक दासी, खिलौना या देवी चाहते हो, संगिनी की तुममें से किसी को आवश्यकता नहीं।" – उड़ान, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 159
27. गरीबी या अमीरी, सेठ गोविन्ददास, पृ. 139
28. यह संवाद देखिए:
    "कुंतलः– विवाह स्त्री और पुरुष के आत्मदर्शन के लिए था।
    जयदेवः– था?... अब नहीं है क्या?
    कुंतलः– अब बीच में पदार्थ आ गया है।" – रातरानी, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 69
29. सुजाता, गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ. 1